जुड़े हाथों के पीछे की आग: वे गांधी, जिन्हें भारत कभी नहीं समझ पाया

Contributed By: आचार्य प्रशांत | नवभारत टाइम्स • 4 Oct 2026, 8:52 am IST

Subscribe YouTube 12M

आचार्य प्रशांत कहते हैं कि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि गांधी व्यक्तिगत रूप से किसी से घृणा नहीं करते थे, लेकिन सामने खड़े होकर टकराने में उनका कोई सानी नहीं था। पीछे कभी नहीं हटते थे, सामने डट जाते थे। हिंसक नहीं थे, पर टकराते जरूर थे, और केवल अंग्रेज़ों से नहीं। जिन्ना से भी भिड़े, और कांग्रेस से भी।



आचार्य प्रशांत : 2 अक्टूबर को गांधी जी की 157वीं जयंती थी, जिसे संयुक्त राष्ट्र अंतरराष्ट्रीय अहिंसा दिवस के रूप में मनाता है। भारतीयों के लिए शायद ही कोई और चेहरा इतना जाना-पहचाना हो। नोटों पर, स्कूल की दीवारों पर उनकी तस्वीर है, और लगभग हर किसी के पास उनसे जुड़ी कोई न कोई पुरानी स्मृति, स्कूल में लिखा कोई निबंध या घर में सुनी कोई कहानी है। उन्हें राष्ट्रपिता कहा गया, तो इतने दशकों से उनका नाम लेकर प्रवचन, बातें और गोष्ठियाँ होती आ रही हैं। इनमें अक्सर एक शिकायत सुनाई देती है कि देश उनकी विचारधारा को भूल रहा है। बात शायद इतनी सीधी नहीं है। देश उन्हें भूल नहीं रहा, उन्हें कभी ठीक से समझ ही नहीं पाया।

इसी अधूरी समझ से दो गांधी पैदा हो गए हैं। एक वह, जिसे हर अक्टूबर सौम्य संत मानकर माला पहनाई जाती है, जिसने दुनिया को अहिंसा का पाठ पढ़ाया। दूसरा वह, जिसकी प्रतिमा पर किसी कस्बे में पत्थर, जूते और गंदगी फेंकी जाती है; उसे ऐसा खलनायक बना दिया गया है जिसकी हर कमज़ोरी का तमाशा बनता है और जिसके हर निर्णय को विश्वासघात कहा जाता है। माला और पत्थर के बीच, वह इंसान ही कहीं खो गया है।

सत्य विचारधारा नहीं होता। अहिंसा भी कोई विचारधारा नहीं होती। किसी व्यक्ति के साथ ऊँचे शब्द जोड़ दिए जाने का नतीजा यह निकलता है कि अगर किसी भी वजह से उस व्यक्ति को नकारा जाए, तो वे शब्द भी नकारे जाते हैं और बदनाम हो जाते हैं। यही हुआ है। सत्य और अहिंसा एक व्यक्ति से इतना कसकर बाँध दिए गए हैं कि

आज का AQI > नई दिल्ली

तापमान | वायु गुणवत्ता

521 AQI
PM2.5 336 µg/m³
खतरनाक

Powered By AQI

वीडियो >



US Midterm Elections: अब्दुल और ममदानी ने मनाई दिवाली, मुस्लिम नेताओं ने...



US Midterm Elections 2026: International Students Raise Concern...



थप्पड़ के बदले थप्पड़... ग्वालियर में एएसआई ने पहले उठाया हाथ तो युवक ने भी दिया करारा जवाब



US vs Pakistan: पाकिस्तान का अमेरिका को झटका! नहीं दी डिपोर्टेशन प्लेन को लैंडिंग की...



Assam Train Accident:

रेकमेंडेड खबरें >


सुबह से लेकर देर रात तक चला हाई वोल्टेज ड्रामा; राहुल गांधी की अगुवाई वाले मार्च में क्या कुछ...


आसमान में भारत का नया पहरेदार, DRDO ने 'हाई-एल्टीट्यूड एयरशिप प्लेटफॉर्म' ...

उसकी प्रतिष्ठा के साथ ये शब्द भी उठते-गिरते हैं, और उस पर जो कुछ फेंका जाता है, वह इन पर भी आ गिरता है।

सत्य का अर्थ यह नहीं होता कि किसी ने पूछा, तुम्हारी जेब में कितने रुपए हैं, और मेरे पास 555 हैं तो मैं बता दूँ, 555 हैं। अहिंसा का अर्थ यह नहीं होता कि आप मुझसे मिलने आए, मैंने कहा, आइए, बैठिए, गुड़ खाइए, पानी पीजिए, और आपने थप्पड़ मार दिया तो कोई बात नहीं, मैं घूँसा नहीं मारूँगा क्योंकि मैं अहिंसक हूँ। न ये आचरण के नियम हैं, न इनकी शुरुआत गांधी से हुई।

तो सत्य फिर है क्या? हर द्वैत का एक सिरा अहंकार ही होता है, वह जो कहता है "मैं"। यही अहंकार जब पलटकर अपनी ओर देखता है, तो जिस द्वैत को वह पकड़े बैठा था, उसके नीचे ज़मीन ही नहीं मिलती। यह देख लेना ही सत्य है। इसमें न कोई सिद्धांत है, न कोई नियम जिसे जेब में रखकर घूमा जाए; यह अभी होता है, और हर बार नए सिरे से होना पड़ता है।

गांधी को लेकर कोई नई बात नहीं कहूँगा। जो पुरानी बातें हैं, बस वही थोड़ी साफ़ हो जाएँ, इतनी कोशिश है।

Advertisement



'शाम 4 बजे तक मिलने के लिए नहीं मांगा गया था समय','इंडिया' गठबंधन के प्रदर्शन पर चुनाव...


'पाकिस्तान की 6 सैटेलाइट भारत पर रख रही नजर, समुद्र में भी बढ़ा खतरा'; पूर्व एयर मार्शल ...

गांधी ने अहिंसा शब्द को जन्म नहीं दिया, अहिंसा बहुत पुरानी बात है। गांधी से पहले बुद्ध हुए, और अहिंसा तो बुद्ध से भी पहले की है, उपनिषदों में है। तो निश्चित रूप से अहिंसा का अर्थ यह नहीं हो सकता कि आदमी कमज़ोर बन जाए, डरपोक बन जाए। अहिंसा का असली अर्थ समझना होगा।

मनुष्य नाम की यह प्रजाति पहले हिंसा अपने ही ख़िलाफ़ करती है, और वहीं से बाकी सारी हिंसाएँ शुरू होती हैं। अहिंसा का अर्थ है अपनी ही ज़िंदगी बर्बाद न करना, अपने ही प्रति संवेदनशील होना। भीतर जो अहंकार बैठा है, 'मैं हूँ' का भाव, उसमें मुक्ति के प्रति प्रेम रहे, यही अपने प्रति अहिंसा है। भीतरी तौर पर अपने आप को बेच दिया और बंधन स्वीकार कर लिए, यह हुई हिंसा। और कहा कि बिकूँगा नहीं, झुकूँगा नहीं, पूरा जीवन बंधनों के विरुद्ध लड़ता रहूँगा, यह हुआ अपने प्रति प्रेम, ऐसा प्रेम जो सुविधा नहीं, मुक्ति चाहता है। उसी प्रेम का नाम अहिंसा है। अहिंसा का मतलब है पहले उस दुश्मन को हराना जो भीतर बैठा है, भीतर की कमज़ोरी को; उस असली दुश्मन से जमकर लड़ना, और ज़रूरत पड़े तो बाहर वाले से भी दो-दो हाथ कर लेना। और जब यह प्रेम भीतर होता है, तो सब रिश्तों में दिखाई देता है।

Advertisement

पर इतने सालों से कोशिश क्या की गई? यही कि भीतर कुछ न बदले, बस बाहर-बाहर अहिंसा का आचरण होता रहे। तो जिसके बारे में पता है कि पक्का घूसखोर है, उसके सामने कहा जाता है कि आपसे ज़्यादा माननीय, इज़्ज़तदार कोई नहीं; और जो चाची चाहती है कि मैं बर्बाद हो जाऊँ, उससे कहा जाता है, चाची, मुझे पता है आप

मुझे बहुत प्यार करती हैं। यह सब हिंसा है। लेकिन यही नकली आचरण अहिंसा के नाम पर सिखाया गया है। लोग शायरी सुनाएँगे और कहेंगे, अहिंसा माने किसी का दिल मत दुखाओ। वास्तविक अहिंसा में तो दिल क्या, धर्म की ज़रूरत हो तो शरीर भी दुखाना पड़ता है; गीता की रणभूमि इसका प्रमाण है।

Advertisement

संस्कृति में यह जो तत्व आ गया है कि सबसे प्यार से बात करो, सबको सम्मान दो, यह भी हिंसा ही है। दुर्योधन से प्यार से बात करें? उससे तो बाण से बात होगी। उसे सम्मान दें? उसे तो गदा मिलेगी। क्या वह सम्मान के लायक है? और उसके प्रति मेरा प्रेम यही है कि मैं उसे सम्मान न दूँ, क्योंकि अगर उसे सम्मान दिए ही जाता हूँ, तो वह बदलेगा क्यों?

गांधी गीता को अपनी माँ कहते थे, और गीता तो युद्धभूमि पर कही गई है, जहाँ तीर बरसने ही वाले थे। अगर अहिंसा का मतलब यही होता कि किसी का दिल न दुखाया जाए, तो गांधी गीता को माँ कैसे कह पाते? गीता में, और उसके बाद हुए युद्ध में, कामनाएँ और मंसूबे तोड़े जा रहे हैं। दुर्योधन को हस्तिनापुर का सिंहासन चाहिए, और कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं, लड़ो। युद्ध का प्रयोजन ही यह है कि राज्य अधर्म के हाथ में न जाए। तो दिल तो दुखाया ही जा रहा है। और दिल की तो बात ही छोड़िए, उस युद्ध में कितने मारे गए, और कितनी तरह की विधियों से। कर्ण, द्रोण, भीष्म और दुर्योधन, सबके साथ अलग-अलग विधि अपनाई गई। बात साफ़ है, किसी आचरण को अपने-आप में अहिंसा नहीं कहा जा सकता। अगर अहिंसा आचरण से तय होती, तो गीता भी हिंसक कहलाती।

Advertisement

दिल्ली के आसपास की धरती ने कई बार ख़ून देखा है। अर्जुन ने भी कुरुक्षेत्र में लाशें गिराईं, और सदियों बाद तैमूर ने 1398 के कत्लेआम में दिल्ली में ही लाशें बिछा दीं। दोनों बातों में अंतर है, बहुत अंतर है, और उसे समझना पड़ेगा। अर्जुन लाशें गिरा रहा है अपने भीतर की नासमझी, अज्ञान और अहंकार को जीतने के बाद। वह अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए नहीं लड़ रहा, वह धर्म के लिए लड़ रहा है, और धर्म से मेरा अर्थ पंथ, समुदाय या मज़हब नहीं है; धर्म माने जो सही है। तैमूर लड़ रहा है ताकि उसके साम्राज्य का विस्तार हो और उसका प्रभुत्व फैले। एक ही काम हिंसा भी हो सकता है और अहिंसा भी। हिंसा का पैमाना यह नहीं है कि ख़ून बहा या नहीं; पैमाना यह है कि मन चेतना के साथ खड़ा है या उसके ख़िलाफ़। अर्जुन अगर अहंकार में, सिंहासन के लिए लड़ा होता, तो वह हिंसा होती। कृष्ण की बात सुनकर और समझकर उसने जो किया, वह अहिंसा है।

Advertisement

गांधी यह जानते थे कि कायरता अहिंसा का नाम लेकर आ सकती है। अगस्त 1920 में 'यंग इंडिया' में छपे अपने लेख 'द डॉक्ट्रिन ऑफ़ द स्वॉर्ड' में उन्होंने लिखा कि अगर चुनाव केवल कायरता और हिंसा के बीच हो, तो वे हिंसा को भी कायरता से ऊपर रखेंगे। वे समझाना चाह रहे थे कि कायरता अहिंसा नहीं है, कायर होने से तो अच्छा है कि हिंसा कर ली जाए। लेकिन साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि हिंसा की अपेक्षा अहिंसा कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

गांधी ने अहिंसा का जो अर्थ दिया, वह ठीक था, पर बस व्यवहार के तल पर; और व्यवहार स्वयं अहिंसा नहीं होता, उसका प्रतिबिंब भर होता है। अहिंसा मूलतः पारमार्थिक होती है, और उस तल पर उसकी माँग कहीं अधिक गहरी है। अगर दूसरा है, तो मैं भी हूँ; दूसरे के होने का अर्थ ही होता है अहंकार, 'मैं हूँ'। और दूसरा, दूसरा होने के नाते ही, पराया हो जाता है, उसे दूर ही रखा जाता है। यह परायापन ही हिंसा है। तो इस तल पर अहिंसा का मतलब न दूसरे से अच्छे संबंध रखना है, न दूसरे से प्रेम करना; अहिंसा का मतलब है यह देख लेना कि दूसरे को दूसरा और पराया बनाने वाला अहंकार है, और यह अहंकार झूठा है। आख़िरकार अहिंसा माने, दूसरा कोई है ही नहीं।

Advertisement

उस तल पर गांधी ने बात नहीं की। उनकी क्षमता दर्शन में नहीं, कहीं और थी; गीता पर उन्होंने जो लिखा है, उसमें मुझे छेद ही छेद दिखते हैं। भीतर से वे इसे समझ पाए या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। उत्तराखंड में उनका अनासक्ति आश्रम है, मैं वहाँ गया था, वहाँ उनकी बातें लिखी हुई थीं, मैंने पढ़ीं। उनमें दार्शनिक गहराई से ज़्यादा व्यवहार की बात थी। लेकिन अनासक्ति अच्छी चीज़ होती है, इतना तो वे जानते थे, और इतना भी अधिकतर लोग नहीं जानते। जो उस गहराई में जीते थे, उन्हें गांधी में कुछ दिखा था। पिछली सदी के पूर्वार्ध के सबसे बड़े संत, रमण महर्षि, गांधी का बहुत आदर करते थे, और उधर गांधी के पास कोई अशांत मन लेकर आता, तो वे उसे रमण के आश्रम भेज देते थे। समझना और जीना एक बात नहीं है। उनका जीवन अहिंसा के बारे में उनकी कही बातों से आगे निकल गया, और उन्हें समझना है तो उनके जीवन से ही समझना होगा।

Advertisement

यह नहीं भूलना चाहिए कि गांधी व्यक्तिगत रूप से किसी से घृणा नहीं करते थे, लेकिन सामने खड़े होकर टकराने में उनका कोई सानी नहीं था। पीछे कभी नहीं हटते थे, सामने डट जाते थे। हिंसक नहीं थे, पर टकराते ज़रूर थे, और केवल अंग्रेज़ों से नहीं। जिन्ना से भी भिड़े, और कांग्रेस से भी। बहुत बार तो भारत की जनता के सामने ही

जाकर अड़ जाते थे; दंगा होता था तो लोगों के सामने खड़े हो जाते थे कि दंगा बंद करो। टकराव के बीच सबके सामने खड़े हो जाना, यही तो उनका काम था। अहिंसा की जो परिभाषा बना ली गई है, उससे तो गांधी भी अहिंसक नहीं ठहरते, क्योंकि वे भी जाकर अड़ जाते थे। उनका आशय यही होता था कि तुम गलत हो और तुम्हें झुकना पड़ेगा, नहीं तो मैं अभी से अनशन पर हूँ; मर जाऊँगा, पर कह रहा हूँ कि तुम गलत हो।

Advertisement

उन्हें याद करना ही है, तो सत्य और अहिंसा के लिए नहीं, उनके आग्रह के लिए याद कीजिए। गांधी से अहिंसा नहीं, आग्रह सीखिए। उन्हें जो बात सही लग गई, सो लग गई; वह सचमुच सही थी या नहीं, यह दूसरी बात है, पर जो सही लगी, उस पर वे अड़ गए। नाम उनका सत्य और अहिंसा के साथ लिया जाता है, पर यादगार उन्हें उनके संकल्प ने बनाया, और उनकी इसी ज़िद से सब घबराते थे। एक दुबला-पतला, वृद्ध, जल्दी चलने वाला आदमी अड़ा हुआ खड़ा है, और उसकी ज़िद से अंग्रेज़ ही नहीं, हिंदुस्तानी भी घबरा रहे हैं। जिन्ना और चर्चिल जैसे विरोधी ही नहीं, उनकी अपनी पार्टी के लोग भी घबरा रहे हैं कि वे कहीं फिर से ज़िद पर न बैठ जाएँ।

Advertisement

आग्रह अपने-आप में कोई गुण नहीं है; ज़िद तो हर अहंकार करता है। उनके आग्रह का मूल्य इसलिए है कि उसकी धार उन्होंने पहले अपने ही ऊपर चलाई, फिर वह दायरा-दर-दायरा बाहर फैलता गया, और हर नया दायरा पिछले से ज़्यादा कीमत वसूलता गया।

पहला दायरा वे स्वयं थे। यह आग्रह उन्हें बना-बनाया नहीं मिला था। अगर अहिंसा स्वयं को न बेचने से शुरू होती है, तो पहली लड़ाई भीतर ही लड़नी थी। शुरुआत में वे दूसरों के सामने टिक नहीं पाते थे, दबाव में अक्सर झुक जाते थे। बहुत साधारण कद-काठी के थे, कोई आकर्षक व्यक्तित्व नहीं था, लोगों के सामने बोलने से डर लगता था। ब्रिटेन में शिक्षा लेने के बाद भी अदालत में जिरह करने से ऐसा डर लगा कि अर्ज़ियाँ लिखने का काम शुरू कर दिया; भरी अदालत में बोलेगा कौन? ख़ुद ही बताते हैं कि आवाज़ नहीं निकलती थी। और ऐसा आदमी, जो अदालत में नहीं बोल पा रहा था, जीवन भर हज़ारों जनसभाएँ संबोधित करता रहा।

Advertisement

घर से पैसे चुराए, मांस खाया, एक बार वेश्यालय तक पहुँच गए, झूठ भी बोला। कामवासना एक समय इतनी प्रबल थी कि पिता की अंतिम घड़ी में भी वे पिता के पास नहीं रह पाए, पत्नी की ओर खिंचे चले गए। एक समय अपने धर्म पर से उनका भरोसा इतना डगमगा गया था कि जो ईसाई मित्र उन्हें ईसाई बनाने में लगे थे, वे लगभग सफल हो ही गए थे। अंग्रेज़ों के इतने कायल थे कि ब्रिटेन में बहुत-सा पैसा सिर्फ़ अंग्रेज़ी तौर-तरीके सीखने और अंग्रेज़ी कपड़े हासिल करने में लगा दिया; फिर वही आदमी अंग्रेज़ों के सामने ऐसा खड़ा हुआ कि अंग्रेज़ उससे थर्राने लगे।

Advertisement

कोई ऐसा ऐब नहीं था जो साधारण आदमी में होता हो और उनमें न हो, और ये सारी बातें उन्होंने स्वयं स्वीकारीं। अपनी कमज़ोरियाँ देख लेना ही काफी नहीं था; उन्होंने एक-एक कमज़ोरी से लोहा लिया। 1906 में उन्होंने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया, प्रचलित संकीर्ण अर्थ में नहीं, उसके व्यापक अर्थ में। उनके लिए ब्रह्मचर्य केवल शरीर का संयम नहीं था; मन के विकारों से मुक्ति के बिना वह व्रत अर्थहीन था। बहुत कम लोगों में यह हिम्मत होती है कि महात्मा कहे जा रहे हों और फिर भी अपनी ज़िंदगी की बातें खुद ही बताए दे रहे हों। वे बार-बार यही कहते थे कि वे प्रयोग कर रहे हैं, जानते नहीं। उन्होंने कहा, 'मेरा जीवन ही मेरा संदेश है', और अपने जीवन को, कमियों समेत, सबके सामने खुली किताब की तरह रख दिया। इसमें एक न्योता छुपा था कि जो उनसे हो सका, वह किसी से भी हो सकता है। एक आदमी, जो बहुत साधारण था, बिलकुल मिट्टी का आदमी, कैसे अपनी कमज़ोरियाँ जीतता चला गया और आगे बढ़ता चला गया, यह बात मुझे उनमें सबसे ज़्यादा प्रभावित करती है।

Advertisement

अगला दायरा उनका अपना घर था। पत्नी के साथ भी उनकी बात बहुत अरसे तक नहीं जमी, क्योंकि जिस पारिवारिक पृष्ठभूमि से वे आ रहे थे, उसके चलते वे पत्नी पर हक चलाते थे, धौंस जमाने की कोशिश करते थे। कस्तूरबा ने शांत दृढ़ता से उनका विरोध किया और दबीं नहीं, और बाद में गांधी ने स्वयं कहा कि जब उन्होंने पत्नी को अपनी इच्छा के आगे झुकाना चाहा, तब अहिंसा का पाठ उन्होंने कस्तूरबा से ही सीखा। विवाह के कई दशकों बाद जाकर दोनों के बीच सामंजस्य और गहरा प्रेम आ पाया। एक पिता के रूप में भी वे बहुत सफल नहीं हो पाए, और यह भी उन्होंने ख़ुद ही बताया।

Advertisement

और इसी घर के भीतर उनकी अडिगता सबसे साफ़ दिखी। 1915 में, अहमदाबाद के पास कोचरब में भारत में अपना पहला आश्रम बनाने के कुछ ही समय बाद, उन्होंने एक दलित परिवार को उसकी छोटी बेटी लक्ष्मी के साथ आश्रम में जगह दी। दानदाताओं ने पैसा रोक दिया, आश्रमवासियों ने विरोध किया, और कस्तूरबा भी विरोध में थीं। वे अड़ गए। उन्होंने कह दिया कि ज़रूरत पड़ी तो वे अहमदाबाद की दलित बस्ती में जाकर रहेंगे और मज़दूरी करके गुज़ारा करेंगे। वे आश्रम बंद करने को तैयार थे, पर उस परिवार को लौटाने को नहीं, और बाद में उन्होंने लक्ष्मी को अपनी बेटी की तरह पाला। उनका रुख़ साफ़ था: जो सही है, सो है, और नहीं मानोगे, तो कुछ नहीं चलने दूँगा; कम से कम मैं उसमें सहयोग नहीं करूँगा। यही तो उनका तरीका था, असहयोग। कुछ गलत हो रहा है और उसे रोक नहीं सकता, तो कम से कम उसे सहयोग देना बंद करूँगा।

Advertisement

तो वे संत थे या राजनेता? यह प्रश्न ही इस भ्रम पर टिका है कि संत होना कोई पेशा है। संत से यह थोड़े ही पूछा जाता है कि आपकी संतई दिन में कितने से कितने बजे चलती है, फ़ाइव-डे वर्क वीक है या सिक्स-डे, साल में कितनी छुट्टियाँ मिलती हैं। संतत्व कोई भूमिका नहीं, सत्य के प्रति समर्पण है, और जो सत्य को समर्पित है, वह बाहर वही करेगा जो समय और परिस्थितियाँ माँगती हैं। जब यह दायरा पूरे राष्ट्र तक फैला, तो समय की माँग थी कि राजनीति में उतरा जाए, देश का नेतृत्व किया जाए, और उन्होंने वह भी किया।

Advertisement

यहाँ तक वे एक झटके में नहीं पहुँचे। दक्षिण अफ़्रीका में वे एक साधारण वकील थे, कोई जन्मजात प्रतिभा नहीं थी; अन्याय देखा, तो उसके ख़िलाफ़ खड़े हो गए, और धीरे-धीरे वकालत भी चल निकली, सम्मान भी मिलने लगा। वह सब छोड़कर भारत लौटे, और यहाँ शुरू के सालों में ज़्यादातर बस देखते-समझते रहे कि देश के साथ हो क्या रहा है। जब समझ आया, तो अपने आप से पूछा, इन लोगों के बीच सूट-कोट पहनकर कैसे जाऊँ? सबसे गरीब की सेवा करनी है, तो उन्हीं में से एक होकर जाना होगा।

Advertisement

राष्ट्र के स्तर पर पहुँचकर यही असहयोग उन लोगों का हथियार बना जिनके पास और कुछ नहीं था। ख़ासकर वह वर्ग जिसके पास संसाधन नहीं थे, उसे गरिमा से खड़ा होना सिखा गए गांधी। उनका संदेश कुछ यूँ था: विरोध करने को तुम्हारे पास और कुछ नहीं है; तोप-तलवार, रुपया-पैसा और राजनीतिक बल नहीं हैं, समाज में आवाज़ भी नहीं है; पर अपनी जान तो है न, उसे लेकर अड़ जाओ। यह है उनका योगदान। और ख़ुद उनके पास क्या था? बस एक छोटी-सी धोती, वह भी अपने हाथ के काते सूत से बनी, और एक संकल्प कि जो मुझे सही लगता है, उस पर अड़ूँगा।

Advertisement

दाँव पर वे सबसे ज़्यादा अपनी जान ही लगाते थे। ज़िद बड़ी बात होती है, आग्रह बहुत बड़ी चीज़ होती है, और उतना सामर्थ्य तभी आ सकता है जब आग्रह उसी बात का हो जो भीतर से उचित लगती हो। नहीं तो किसी निजी ज़िद के लिए कोई आमरण अनशन नहीं कर पाएगा। किसी फ़िज़ूल, उथली बात के लिए कोई कह दे कि खाना नहीं खाऊँगा, तो दो ही दिनों में इधर-उधर से फ़्रिज खुलने की आवाज़ आने लगेगी।

1931 में लंदन के राउंड टेबल सम्मेलन में कांग्रेस ने उन्हें अपना एकमात्र प्रतिनिधि बनाकर भेजा। वहाँ की तस्वीरें आज भी देखी जा सकती हैं। ज़्यादातर लोग सूट में बैठे हैं, सूट ही नहीं, गर्म सूट, और उनके बीच एक लगभग निर्वस्त्र, दुबला आदमी बैठा है जिसने बाकी सबमें हीन भावना भर दी है। यह धोती उन्होंने सोच-समझकर अपनाई थी; उन्होंने विदेशी कपड़े ही नहीं, आम आदमी का साधारण पहनावा भी छोड़ दिया था। यही सादगी उनका हथियार है, और वे इसे पूरे इरादे से इस्तेमाल कर रहे हैं, जैसे कह रहे हों, मैं भारत हूँ, मैं अकेला हूँ; मेरे पास न संख्या है, न बल, पैसा तक नहीं, लेकिन देखो, मेरे सामने तुम सब लज्जित हो। चर्चिल ने उस यात्रा में उनसे मिलने तक से इनकार कर दिया था; उसी साल की शुरुआत में वे इस बात पर घृणा जता चुके थे कि यह वकील अधनंगा होकर वायसराय के महल की सीढ़ियाँ चढ़ता है। चर्चिल को गांधी एकदम नहीं सुहाते थे। आज भी गांधी किसी सभा के सामने आ बैठें, तो लोग उन्हें मंत्रमुग्ध होकर सुनेंगे; सुनने के बाद कह सकते हैं कि उनकी बहुत-सी बातें व्यावहारिक नहीं हैं, लेकिन यह नहीं कह पाएँगे कि यह आदमी हल्का है।

Advertisement

अंतिम दायरा सबसे कठिन था, क्योंकि उसमें लड़ाई अपने ही देशवासियों से थी। 1934 में, आज़ादी से तेरह साल

पहले, उन्होंने कांग्रेस की प्राथमिक सदस्यता छोड़ दी, और कोई पद न होते हुए भी उनकी बात का वज़न बना रहा। वे कहते थे कि वे समाज-सुधार का काम कर रहे हैं; भारत से अस्पृश्यता हटानी है, गाँवों में जो इतनी गंदगी है, वह साफ़ करनी है, शरीर की भी और मन की भी। दलितों के लिए उन्होंने 'हरिजन' शब्द अपनाया, जो उन्होंने कवि-संत नरसिंह मेहता से लिया था, और कहा कि कुएँ, मंदिर और स्कूल इनके लिए खोले जाएँ। आंबेडकर समेत कई दलित नेताओं ने यह शब्द कभी स्वीकार नहीं किया, और आज इसे उचित नहीं माना जाता। बिलकुल कहा जा सकता है कि और करना चाहिए था, मैं सहमत हूँ; पर आज और करने से किसी को कोई रोक नहीं रहा, और एक इंसान जो कर गया है, उसका ज़बरदस्ती अपमान करना ठीक नहीं है।

Advertisement

अपने अंतिम वर्षों में वे सांप्रदायिक घृणा के ही विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे। नोआखाली में दंगे भड़के, तो वे वहाँ अकेले पहुँच गए और वहीं रुके रहे, यह ठानकर कि कत्लेआम नहीं होने देंगे। 15 अगस्त 1947 को, जब दिल्ली जश्न मना रही थी, वे दंगों से झुलसते कलकत्ता में उपवास और प्रार्थना कर रहे थे। वे अपने ही देशवासियों की हिंसा के ख़िलाफ़ खड़े थे, और अंततः इसी के लिए उन्होंने गोली भी खाई। ऐसा जीवन गलत समझे जाने लायक नहीं था, फिर भी भारत ने उसे दो-दो तरह से गलत समझा।

Advertisement

पहले बात पत्थर की। गांधी में सबसे कम रुचि उन्हीं की है जो उन पर पत्थर फेंकते हैं। ज़्यादातर ने उन्हें पढ़ा नहीं, पढ़ना चाहते भी नहीं। उन्हें कुछ और खड़ा करना है, और गांधी उस रास्ते में आते हैं। अगर संकीर्ण, सांप्रदायिक खाँचों में बँटा समाज बनाना है, तो पहले उदारता और सांप्रदायिक सद्भाव के प्रतीक को गिराना पड़ेगा। अज्ञान जहाँ भी राज करना चाहेगा, वहाँ प्रकाश की बात करने वाला हर व्यक्ति उसे दुश्मन ही दिखेगा। गांधी सिर्फ़ एक व्यक्ति नहीं, एक विचार हैं; पत्थर उस विचार पर चलाया जा रहा है।

Advertisement

इस पत्थर का सबसे भारी आरोप यह है कि उनकी अहिंसा ने भारतीयों को कायर बना दिया। पर यह तो पूछा जाए कि इतने लोग चंद अंग्रेज़ों के गुलाम बने कैसे? यह पूरा एक उपमहाद्वीप था, आज का भारत ही नहीं, पाकिस्तान, बांग्लादेश और आसपास के कुछ और हिस्से भी। यूरोप के उत्तर-पश्चिम के कुछ छोटे-से द्वीपों से वे चले आ रहे हैं, समुद्र के रास्ते, महीनों की यात्रा करके, जब न बिजली थी, न टेलीग्राफ़, और देखते-देखते उन्होंने भारतीयों को गुलाम बना लिया, और लगभग दो सदियों तक राज किया। ज़रूर भारतीय मन में, भारतीय व्यक्ति में घुन लग गया था; कोई बहुत बड़ी आंतरिक कमज़ोरी थी, अनुशासन की कमी थी, जात-पात जैसी मूर्खताओं में गहरा विश्वास था, और ये सब अहंकार को ही पालने-पोसने वाली चीज़ें थीं। तभी तो वह इतनी आसानी से हार गया। जिस वजह से भारतीय गुलाम बने थे, अगर वह वजह 1921 में भी मौजूद थी, तो अंग्रेज़ों को तब कैसे हराया जाता, जब उनकी ताकत और बढ़ गई थी?

Advertisement

1922 के भारत को उस समय के ब्रिटेन के साथ रखकर देखना होगा, जिसके साम्राज्य में कभी सूरज अस्त नहीं होता था, और जो अभी-अभी जर्मनी को हराकर निकला था। तो क्या गांधी हिंसा करवाते? भारत के इन भूखे, अधनंगे और दरिद्र लोगों से कहते कि सड़क पर आ जाओ, अंग्रेज़ों को मारकर भगा दो? अंग्रेज़ी शासन चला कौन रहा था? मुख्यतः भारतीय ही चला रहे थे, वे भारतीय जो इतने भूखे थे कि पेट की ख़ातिर कुछ भी करने को तैयार थे, और क्रांतिकारियों की मुखबिरी करके उन्हें पकड़वाने वाले भी भारतीय ही थे। खाने को रोटी नहीं, पढ़े-लिखे नहीं, सौ तरह के अंधविश्वासों में लिप्त, जात-पात और गंदगी के नर्क में डूबे हुए; ऐसे लोगों से हिंसक जन-आंदोलन कैसे करवा लेते? तो धीरे-धीरे उन्होंने देशवासियों से कहा, असहयोग करो; लड़ मत जाना, पर अंग्रेज़ों की बात मान भी मत लेना। कोई कह सकता है कि आगे चलकर एक भगत सिंह आए, तो दस हज़ार भगत सिंह भी तो हो सकते थे। हो नहीं पाए; और अगर होते, तो गांधी के रोके भी नहीं रुकते।

Advertisement

चौरी-चौरा के बाद का उनका निर्णय भी इसी समझ से निकला था। फ़रवरी 1922 में भीड़ ने वहाँ के थाने में आग लगा दी और पुलिसकर्मी उसमें मारे गए, तो उन्होंने अपने चरम पर पहुँचे असहयोग आंदोलन को वापस ले लिया, जिससे कांग्रेस के कई लोग निराश हुए। हर आंदोलन वे अपने निर्णय से शुरू करते थे और अपने निर्णय से ही रोकते थे, और इस बार उन्हें साफ़ दिख रहा था कि अभी भी बेसब्री है, अनुशासन की कमी है, और कोई यह पूछना ही नहीं चाहता कि भारत हारा क्यों था। अहंकार स्वयं को देखने के बजाय दुश्मन को दोष देना पसंद करता है।

Advertisement

बंदूक का रास्ता छोड़कर उन्होंने सोच-समझकर चुना कि चोट कहाँ करनी है। भारत की कपास ब्रिटेन की कपड़ा मिलों तक जाती थी, पर उससे बड़ी बात यह थी कि उन मिलों का बना कपड़ा सबसे ज़्यादा भारत में ही बिकता था। वे जो विदेशी महीन कपड़ों की होली जलवाते थे, वह कोई हल्की चीज़ नहीं थी; मैनचेस्टर उनका नाम अच्छी तरह जानता था। उनका तर्क सीधा था: ये व्यापारी हैं, पैसे के भूखे हैं; भारत को लूट-लूटकर लंदन मोटा हो रहा है, मैं भारत की लूट रुकवाऊँगा। गोली न मेरे देशवासियों के पास है, न चलवाऊँगा; चलवाऊँगा तो यही लोग मरेंगे, और लाखों में मरेंगे। मैं वहाँ चोट करूँगा जहाँ इन्हें दर्द होता है। चाहे खादी हो, चाहे नमक सत्याग्रह, सब कुछ उसी लूट को रोकने के लिए था।

Advertisement

रही बात कायरता की, तो उसके सबसे तीखे आलोचक वे स्वयं थे; उन्होंने ही कहा था कि कायरता के बजाय वे हिंसा की सलाह देंगे। फिर इस आरोप को गांधी तक सीमित भी कैसे रखा जाए? अगर पहले स्वयं को देखना किसी को कायर बनाता है, तो यह आरोप उनसे पहले की पूरी परंपरा पर लगाना होगा, उपनिषदों के ऋषियों से लेकर महावीर और बुद्ध तक। 'जिन' शब्द का अर्थ ही है विजेता, वह जिसने स्वयं को जीत लिया। अपनी ही सच्चाई का सामना करने से कोई कायर कैसे हो जाता है? इन सबने यही सिखाया कि सबसे बड़ा साहस पहले अपने आप को जीतना है। इनमें से किस-किसको मारेंगे?

Advertisement

दूसरा आरोप, कि उन्होंने पाकिस्तान का तुष्टीकरण किया, मुख्य रूप से एक रकम पर टिका है, वही

रकम जिसे उनके हत्यारे ने अपना कारण बताया। विभाजन के बाद सरकार ने अविभाजित भारत की नकदी में पाकिस्तान का बचा हुआ हिस्सा, 55 करोड़ रुपए, रोक लिया था, और जनवरी 1948 में उनके अंतिम उपवास के दौरान उसे जारी करने का निर्णय हुआ। यह उपवास पैसे के लिए नहीं, दिल्ली में सांप्रदायिक शांति के लिए था। पैसा न देते, तो क्या पाकिस्तान कहता कि नहीं, कश्मीर नहीं चाहिए? अपना दावा छोड़ देता? या उसने घुसपैठिए इसीलिए भेजे कि पैसा मिलने वाला था? घुसपैठिए तो अक्टूबर 1947 में ही कश्मीर में घुस चुके थे, पैसा जारी होने से तीन महीने पहले। पाकिस्तान को कश्मीर में जो करना था, वह कर ही रहा था। हाँ, इतना ज़रूर होता कि

भारत का पक्ष कमज़ोर हो जाता; भारत उस ऊँचाई को भी खो बैठता जो वचन निभाने वाले राष्ट्र की होती है। पैसा बचाकर कुछ नहीं मिल जाता; वह तो देना ही था।

Advertisement

तो क्या पाकिस्तान गांधी ने बनवाया? विभाजन नहीं होगा, इस बात पर गांधी से ज़्यादा कोई नहीं अड़ा, और जिन्ना अगर किसी एक आदमी से घबराते थे, तो वह गांधी ही थे। मई 1942 में 'हरिजन' में उन्होंने भारत के विभाजन को पाप कहा था। लेकिन 1946-47 तक सांप्रदायिकता की आग इतनी भड़काई जा चुकी थी कि पूरे-पूरे प्रांतों में हिंसा फैल रही थी, और एक-दूसरे की घृणा में डूबे दो समुदायों को किसी एक आदमी की इच्छा से साथ नहीं रखा जा सकता था। विभाजन रोकना था, तो सही कदम दशकों पहले उठाने थे। फिर भी कोई कह सकता है कि उनसे कहीं कोई चूक हुई; तो वह निर्णय की चूक होगी, उससे अधिक कुछ नहीं।

Advertisement

उनकी आलोचना उचित है, और वे जीवन भर आलोचना का स्वागत करते रहे। मैं उनका कोई बहुत बड़ा प्रशंसक नहीं हूँ। IIM अहमदाबाद में था, तो आधा समय उनके साबरमती आश्रम में ही बीतता था, और एक जिज्ञासु छात्र की तरह तब से उनसे सवाल पूछता आया हूँ; बहुत-सी बातों पर उनसे असहमत भी रहा हूँ। पर आलोचना एक बात है, और लांछन बिलकुल दूसरी। बीते वर्षों में गांधी जयंती के आसपास कई जगह उनकी प्रतिमाएँ खंडित की गईं, उन पर गंदगी फेंकी गई। उनकी हत्या एक बार हुई थी; अब उन्हें दूसरे तरीकों से मारने की कोशिश होती है। पर कुछ चीज़ें मारी नहीं जा सकतीं। अपनी सारी बातें उन्होंने किताबें लिखकर, या किसी के पूछने पर, स्वयं स्पष्ट कर दीं, और जो उन्होंने ख़ुद ही बता दिया, उसी को लेकर आज शोर मचाया जाता है। जिस आदमी ने लगभग कुछ नहीं छुपाया, उसे परखने से पहले यह भी पूछ लिया जाए कि अपने जीवन के कितने राज़ हम आज तक प्रकट कर पाए हैं। आइंस्टीन ने कहा था कि आने वाली पीढ़ियों को शायद ही विश्वास होगा कि ऐसा कोई व्यक्ति हाड़-मांस के शरीर में इस धरती पर चला था। अपने ही देश के कुछ हिस्सों में आज उनके बारे में जिस तरह बात होती है, उसे देखकर लगता है कि ये शब्द उम्मीद से कहीं जल्दी सच हो रहे हैं।

Advertisement

माला नरम ज़रूर है, पर सच वह भी नहीं कहती। क्या वे महात्मा थे, ऋषि थे? इन उपाधियों से उन्हें तौलना ठीक नहीं। लोगों को उनसे लगाव हो गया, जनता ने उन्हें महात्मा कह दिया; यह लोगों का किया हुआ था। उन्होंने कभी नहीं कहा कि मुझे महात्मा कहो, और अपने बारे में किसी दिव्यता को कभी बढ़ावा नहीं दिया। आम तौर पर माना जाता है कि रवींद्रनाथ ने उन्हें महात्मा की उपाधि दी, और राष्ट्रपिता उन्हें सुभाष चंद्र बोस ने कहा, 1944 में आज़ाद हिंद रेडियो से। आज बहस ऐसे होती है जैसे वे चाह रहे हों कि उन्हें महात्मा माना जाए, और आलोचक किसी फ़रेब का पर्दाफ़ाश कर रहे हों; जबकि इनमें से कोई सम्मान उन्होंने कभी माँगा ही नहीं। उनके बड़े समकालीनों ने भी उन्हें देवता नहीं बनाया। नेहरू, पटेल और बोस, सभी उनसे असहमत रहे, कुछ तो तीखे ढंग से। रवींद्रनाथ ने स्वयं चरखे का विरोध किया और गांधी के राष्ट्रवाद पर संदेह जताया, फिर भी उनके मन में गांधी के लिए गहरा सम्मान था। वे उनसे बहस करते थे, उन्हें गाली नहीं देते थे, और वह स्वस्थ संवाद आज की नारेबाज़ी से बहुत दूर है।

Advertisement

'राष्ट्रपिता' की उपाधि किसी शाब्दिक दावे से अधिक स्नेह की अभिव्यक्ति है। यह देश राजनीतिक रूप से नया-नया है, राष्ट्र तो अतिप्राचीन है, और इसकी जड़ें उन ऋषियों तक जाती हैं जिन्होंने उपनिषदों और ऋचाओं की रचना की। इस राष्ट्र के यदि कोई पिता हैं, तो वे ऋषि ही हैं। गांधी स्वयं भी शायद यही कहते।

उपाधि भी लोगों ने दी, और कद भी लोगों ने ही दिया। गांधी से उच्चतर कोई होता, तो खड़ा हो जाता, देशवासी उसके साथ चल देते; जनता ने किसी और को उस तरह स्वीकार नहीं किया। दशकों तक एक गरीब देश ने भरोसे के साथ उनकी झोली भरी, उद्योगपतियों ने ही नहीं, उन किसानों ने भी जिनके पास लगभग कुछ नहीं था, दो पैसे, दो रुपए, आज़ादी के यज्ञ में आहुति की तरह। लोग देखते थे कि एक बूढ़ा आदमी सत्तर पार करके, अस्सी की ओर बढ़ते हुए भी, एक गाँव से दूसरे गाँव चला जा रहा है। क्या पहले की पीढ़ियाँ मूर्ख थीं जो उन्हें इतना मानती थीं? नहीं थीं; उन्होंने उस आदमी में कुछ देखा था। जो उस उम्र में, इतने बरसों तक, इस तरह चलता रहा, उसे हल्के में ख़ारिज नहीं किया जा सकता।

Advertisement

इंसान को इंसान की तरह देखने का अर्थ उसकी सीमाएँ भी देखना है। उनके बहुत-से विचार, विशेषकर अर्थव्यवस्था से जुड़े सिद्धांत, आज लागू किए जाएँ तो आधुनिक राष्ट्र के काम नहीं आएँगे। IIT दिल्ली में टेक्सटाइल इंजीनियरिंग पढ़ते समय यह चर्चा अक्सर होती थी कि भारत का कपड़ा उद्योग पिछड़ कैसे गया, और उसमें उनके सिद्धांतों की भी एक भूमिका थी। हथकरघा पावरलूम से कभी जीत सकता है क्या? चरखा चलाकर कोई देश अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धी हो सकता है क्या? लेकिन इससे वे खलनायक नहीं हो जाते; उन्होंने खादी पहनने और सूत कातने को इसलिए नहीं कहा कि वे भारत का नुकसान चाहते थे। उन्होंने वही कहा जो उन्हें देश

के लिए हितकर लगा, और उन्हें इतना श्रेय तो मिलना चाहिए कि जो उन्हें सही लगा, उसे उन्होंने हिम्मत के साथ सामने रखा और देशवासियों का नेतृत्व करके उस पर अमल भी करवाया।

Advertisement

यह भी सच नहीं कि उन्होंने अकेले आज़ादी दिला दी, जैसा एक लोकप्रिय फ़िल्मी गीत से लगता है। द्वितीय विश्वयुद्ध, 1946 का नौसेना विद्रोह, हिंसा का मार्ग चुनने वाले क्रांतिकारी और सुभाष चंद्र बोस के प्रयास, इन सबने आज़ादी की तिथि को निकट लाने में मदद की। लेकिन गांधी न होते, तो क्या आज़ादी उसी दिन मिल जाती? यह कहना गलत है कि गांधी ने अकेले आज़ादी ला दी, और यह कहना तो और भी गलत है कि आज़ादी में गांधी का कोई योगदान नहीं था। इस शिकायत में कुछ सच्चाई हो सकती है कि उनके कद ने दूसरे स्वतंत्रता सेनानियों को छाया में डाल दिया। वे इतने विशाल वृक्ष बन गए कि उनके नीचे बहुत कुछ दिखाई ही नहीं दिया। तो होना यह चाहिए कि उन सेनानियों की कहानियाँ उजाले में लाई जाएँ और उन्हें पूरा सम्मान मिले, और इसके लिए गांधी को गाली देने की कोई ज़रूरत नहीं है। कबीर साहब कहते हैं, "सार-सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय।" जो सीखने लायक है, वह सीखा जाए; बाकी को छोड़कर आगे बढ़ा जाए।

Advertisement

पत्थर और माला एक-दूसरे के उलट लगते हैं, पर दोनों एक ही काम करते हैं। पत्थर फेंकने वाला और माला पहनाने वाला, दोनों उन्हें भी पढ़ने की ज़हमत से बच जाते हैं, और स्वयं को भी। असल समस्या गांधी से कहीं गहरी है। वे जिन सिद्धांतों पर चल रहे थे, वे तो बहुत पुराने हैं, और उनमें से कोई बात समझी ही नहीं गई: अहंकार क्या है, सत्य और अहिंसा का अर्थ क्या है। जिस समाज ने इन्हें नहीं समझा, वह आज या कल, इनकी बात करने वाले किसी भी व्यक्ति को नहीं समझेगा। इस भारतीय समाज को न पुराने ढर्रे का सत्याग्रह चाहिए, न पुराने ढर्रे की अहिंसा; इसे विद्रोह चाहिए, आग चाहिए। सत्याग्रह का इशारा हमेशा इसी विद्रोह की ओर था, और अहिंसा की शुरुआत उसी आग से होती है जो झूठ को जला दे।

Advertisement

और इस विद्रोह में पहला असहयोग उससे होना है जो हमें लगातार अपने आप से दूर खींचता रहता है। ऐसी ताकतें इतनी मज़बूत पहले कभी नहीं थीं। मीडिया हो या राजनीति, सब आँखों को बाहर ही अटकाए रखते हैं, किसी लालच या किसी दुश्मन पर, किसी सनसनी पर या उस साँप पर जिसके बारे में बताया जाता है कि बस डसने ही वाला है, ताकि नज़र कभी भीतर न मुड़े। जिस आदमी का पूरा तरीका ही गलत से हाथ खींच लेना था, वह समझ जाता कि शुरुआत कहाँ से करनी है।

Advertisement

हर गांधी जयंती पर सत्य और अहिंसा, ये दोनों शब्द हर जगह बोले जाते हैं। स्कूली बच्चे इन्हें दोहराते हैं और मंत्री इन्हीं शब्दों के साथ पुष्पांजलि अर्पित करते हैं, और शाम तक दोनों शब्द अगले साल के लिए तह करके रख दिए जाते हैं। किसी पर यह बाध्यता नहीं कि वह उनके मार्ग पर चले या उनके सिद्धांत और आदर्श अपनाए। पर उन्हें एक बार ठीक से पढ़ लेना, जान लेना, ज़रूरी है। आसान नहीं होता गांधी बनना, और किसी से यह अपेक्षा भी नहीं है। वे पीछे एक छोटा-सा, पर कहीं कठिन सवाल छोड़ जाते हैं: थोड़े-से चैन के बदले भीतर क्या बिक चुका है, और कौन-सी ज़ंजीरें स्वीकार कर ली गई हैं?

(आचार्य प्रशांत एक दार्शनिक और लेखक हैं। उनका कार्य आत्म-अन्वेषण और समकालीन जीवन में उसके अनुप्रयोग पर केंद्रित है।)

कन्वर्सेशन शुरू करें | कमेंट पोस्ट करें

India

की ताजा खबरें, ब्रेकिंग न्यूज, अनकही और सच्ची कहानियां, सिर्फ खबरें नहीं उसका विश्लेषण भी। इन सब की जानकारी, सबसे पहले और सबसे सटीक हिंदी में देश के सबसे लोकप्रिय, सबसे भरोसेमंद

Hindi News

डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म नवभारत टाइम्स पर

TOP TRENDS

Harmanpreet Kaur | India Bloc March Live | Gyanesh Kumar | Kash Patel | Gold Silver Price | MLC Election | Hanuman Ansh Collection

NBT नवभारत टाइम्स

Powered by TIMES INTERNET

Languages Sites

Kannada News | Marathi News | Malayalam News | Gujarati News | Bangla News | Samayam News | Telugu News | English News | Tamil News | Pregatips News

About

About Us | Colombia Ads and Publishing | Terms and Conditions | Privacy Policy | Work With Us | RSS

Follow Us On

This website follows the DNPA's code of Conduct

Copyright - 2024 Bennett, Coleman & Co. Ltd. All rights reserved. For reprint rights :Times Syndication Service